अंक-3, जनवरी 2024

पर्यावरण संवाद

प्रकृति एवं देशज संस्कृति के संरक्षण और संवर्द्धन के लिए

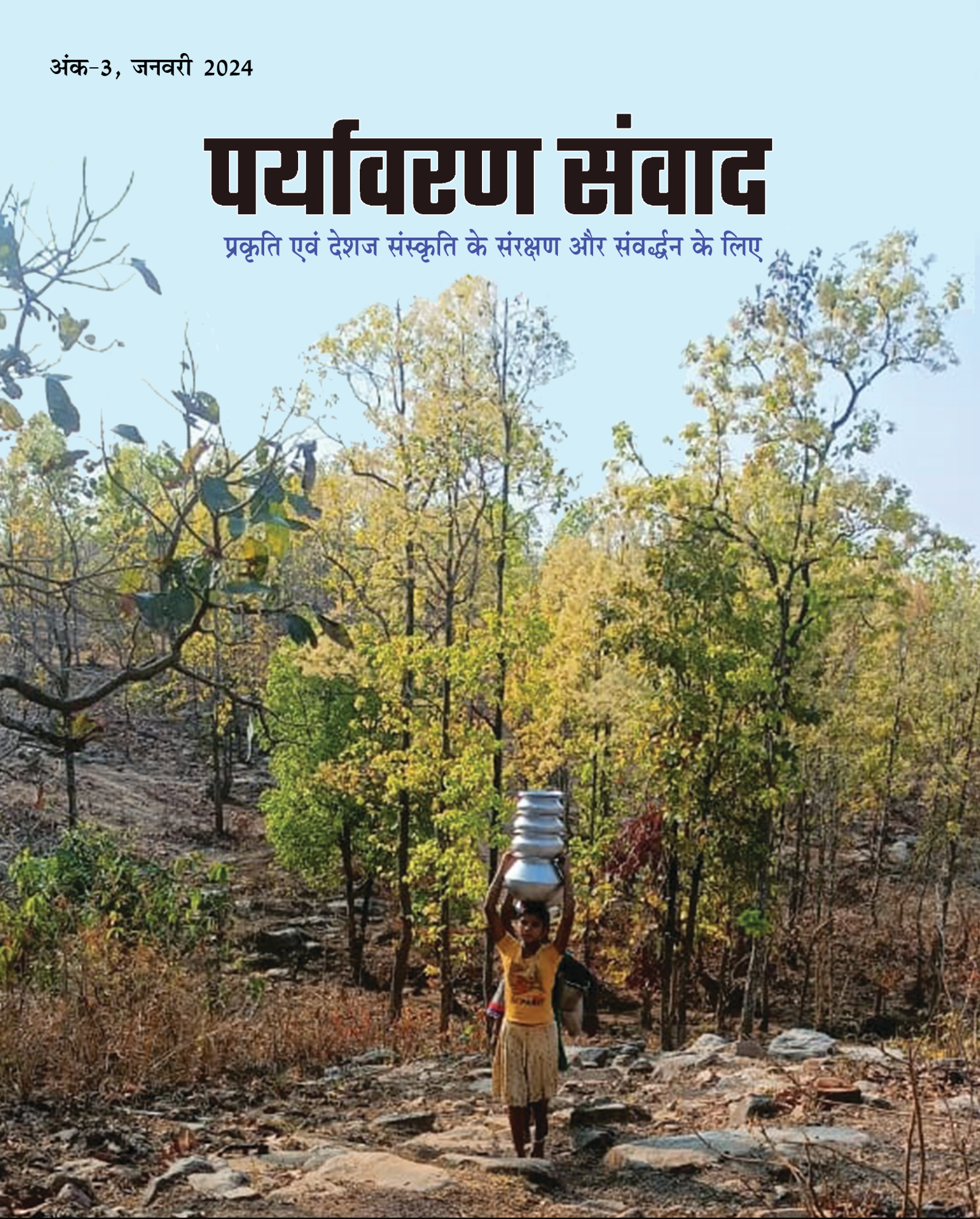

जलवायु संकट का देशज समाधान

फुललइ कोरइया फूल

फुललइ कोरइया फूल फूललइ परास।
हो सहिया ऽ बोनवाहिं लागो हइ हुलास॥

आम-जामुन-केन्द-पियार, कसुम-सरइया।
हो सहिया ऽ महुआ तो लागो हइ सुरास॥

कोइंद भेलवा पोदो डुमइर अँउरा-आँउरा-हरइ-बेहरा।
हो सहिया ऽ नीम करोज़ अरो लोराई - बांस॥

करील-कुंदरी-खखसा, खुंखड़ी-गेंठी आर टेना।
हो सहिया ऽ कन्दमूल मिलइ बारो मास॥

पाँड़ तितिर सुगा मइना मेंजुर कोयलिया।
हो सहिया ऽ बोलिया तो लागो हइ मिठास॥

बाघ हुंडार हाँथी-सियार, भाल-बांदर-बरहा।
हो सहिया ऽ हरिन खेरा फुदकल जाय॥

बोनवाहिं बइरसो हइ कारी बदरिया।
हो सहिया ऽ बोन सभे जिनगी के आस॥

'बासु' कहे बोन के नै करिहा बिनास।
हो सहिया ऽ बोन सभे जिनगी के आस॥

- बासु बिहारी

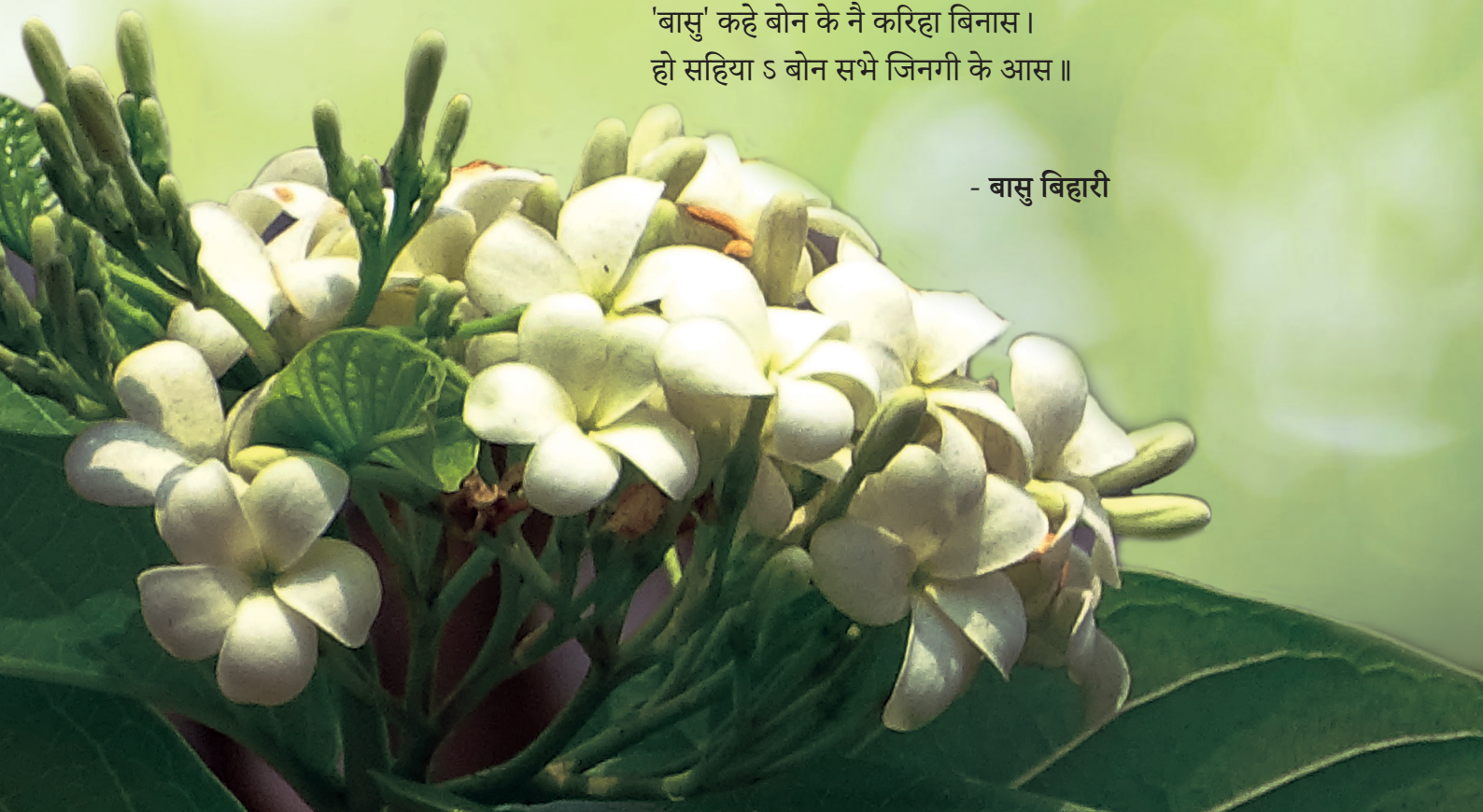

संपादक
घनश्याम

संपादक मंडल
उदय
अबरार ताबिन्दा
पूनम रंजन
सीमांत सुधाकर
महेश मिश्रा
तहा सैफुद्दीन
सालगे मार्डी
ऐनी टुडू
श्रावणी
शशि बारला
मति मुर्मू

संवाद सूत्र
माालती कुमारी
अश्विनी महाराणा
संजय समीर एक्का
आनंद मरांडी
कुर्दुला कुजुर
कुंदन कुमार भगत
सीमा
सुशीला हेम्ब्रम
मनीला बास्की

कला संपादक
शेखर

साज-सज्जा
जमील व जावेद

संपादन कार्यालय
पर्यावरण कक्ष "संवाद" 52 बीघा,
मधुपुर, झारखण्ड
की ओर से प्रकाशित
मुख्य कार्यालय
'संवाद', 104/A उर्मिला इन्क्लेव,
पीस रोड, राँची - 834001
www.samvad.net

घनश्याम द्वारा संपादित एवं प्रकाशित तथा
कैलाश पेपर कन्वर्शन प्रा. लि., राँची द्वारा मुद्रित
सीमित प्रसार

- **दृष्टि**
  जलवायु संकट : विकल्प देशज खेती- **'जलवायु संकट देशज समाधान' से साभार** 5
- उत्तम खेती, मध्यम बान - **संवाद टीम** 6
- **जमीनी हकीकत**
  जलवायु संकट : पहाड़िया जनजाति की आजीविका खतरे में - **डा. दुष्यंत कुमार** 7
- **सच से साक्षात्कार**
  जलवायु परिवर्तन के कारण खेती किसानी घाटे का सौदा - **शेखर शरदेंदु** 9
- मिट्टी रहित खेती यानी आधुनिक खेती – **राजकुमार** 10
- **चिंता सहचिन्तन** 11
  जलवायु संकट : पूँजीवाद की उपज – **डॉ. कैलाश प्रसाद राउत**
- **सुजलाम-सुफलाम** 13
  ग्रीन स्कूल : जलवायु संकट के खिलाफ़ देशज पहल – **पर्यावरण डेस्क**
- **नवाचार** 15
  जैविक कीटनाशक – **स्व० ब्रजकिशोर प्रसाद**
- **रपट गाँव की**
  जैविक खेती में है जलवायु संकट का हल - **रिपोर्ट संकलन: सीमांत** 16
- किसान क्या कर सकते हैं? - **पर्यावरण डेस्क** 17
- **प्यासमरी**
  बांग्लादेश : पानी बीच प्यासा देश - **उपेन्द्र शंकर** 18
- **ऊर्जा रूपांतरण**
  जरूरी है जस्ट ट्रांजिशन - **गुलाब चंद्र** 20

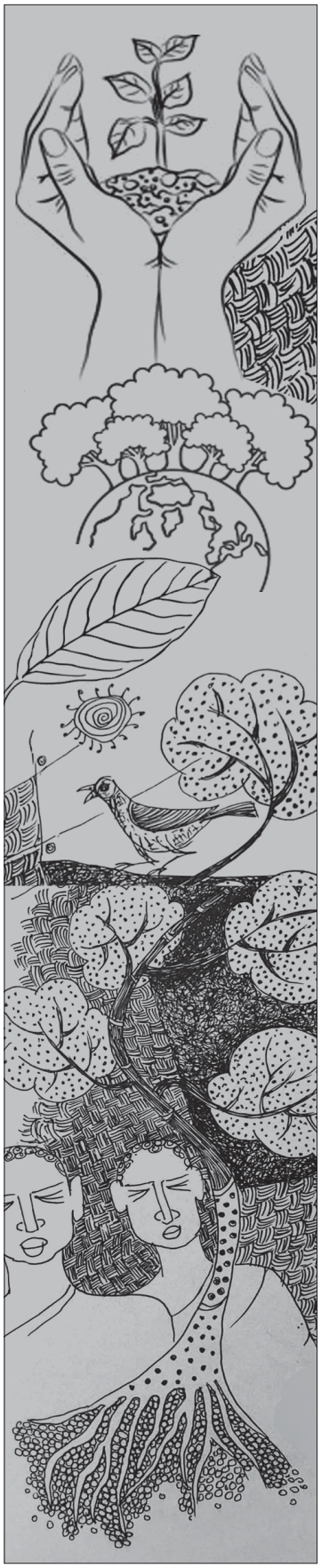

प्रकृति के साथ सहजीविता ही है जलवायु संकट का समाधान

जलवायु संकट से आज की दुनिया त्राहिमाम कर रही है। इसके समाधान के लिए पूरी दुनिया की सरकारें, यू.एन. जैसी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं तथा अन्य स्वैच्छिक संस्थाएं न सिर्फ चिंतित हैं बल्कि चिंतनरत भी हैं। चिंतन का यह दौर पिछले दो दशक से जारी है बावजूद इसके संकट घटने के बदले बढ़ता ही जा रहा है। क्यों हो रहा है ऐसा? क्या चिंतन की दशा और दिशा में कहीं दोष तो नहीं है? इन प्रश्नों पर विचार करने से पूर्व यह विचार करना जरूरी लगता है कि जलवायु संकट के लिए जिम्मेवार कारकों को क्या हमने पहचानने की कोशिश की है? क्या महज विकसित देशों के नजरिये और कथित वैज्ञानिक ढंग से देखने को मानक माना जाएगा या फिर इसे और गंभीरता से समझने की जरूरत है?

अमूमन यह माना जाता है कि जलवायु परिवर्तन के मुख्य कारक हैं- प्रकृति और मानव। प्राकृतिक कारकों में महाद्वीपों का खिसकना, ज्वालामुखी का फटना, समुद्र की तरंगें और सृष्टि की धूरी में हो रहे परिवर्तन इत्यादि प्रमुख हैं। इसी प्रकार मानवीय कारकों में बढ़ता औद्योगीकरण, ऊर्जा की बढ़ रही बेतहाशा खपत, वनों व पौधों की संख्या में गिरावट, जनसंख्या वृद्धि, भूमि के उपयोग में बदलाव, परमाणु शस्त्रों और परमाणु ऊर्जा की होड़ इत्यादि प्रमुख हैं। लेकिन उक्त तमाम कारकों के अलावे जो सबसे महत्वपूर्ण मानवीय कारक हैं विकास की विनाशकारी अवधारणा तथा जीवन-चक्र और जीवन मूल्यों में आ रही गिरावट जिसे नजरअंदाज किया जाता रहा है। शायद ऐसा जानबूझकर किया जाता रहा है। क्योंकि आज के जो भी मानवीय कारक जिम्मेवार हैं जलवायु संकट के लिए उनके केन्द्र में हैं- विकास की विनाशकारी सोच, विध्वंसकारी तकनीक, शोषणकारी प्रक्रिया और भोगवादी जीवन शैली।

प्रकृति को गुलाम बनाने और उन्हें उपभोग की वस्तु की तरह इस्तेमाल करने की जो सोच विकसित की गई, ने हमें यहां ला खड़ा किया है। प्रकृति के अंधाधुंध दोहन और मानव तथा मानवेत्तर प्राणी के अधिकाधिक शोषण पर विकास की बुनियाद रखी गई जिससे उपजे सामंतवाद, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद और नवसाम्राज्यवाद। इन 'वादों' के जकड़न और अकड़न ने इंसान और इंसानियत को महज प्रकृति से विस्थापित नहीं किया, बल्कि मानवीय मूल्यों से भी उद्वासित कर दिया। परिणामतः जलवायु संकट आज की दुनिया की बड़ी समस्या है।

जलवायु संकट : विकल्प देशज खेती

आजादी के बाद देश में जो अर्थनीति अपनायी गई वह मिश्रित अर्थव्यवस्था की थी। उस समय यह दबाव अपने ऊपर था कि अपना देश भारत अमेरिका और रूस, जो उस समय को दो ध्रुवीय ताकत थे, को एक साथ, खुश रखे। प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल जी बहुत हद तक इस संतुलन को अपनी मिश्रित अर्थव्यवस्था से, बनाये रखने में कामयाब हुए। लेकिन इस मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी और सरकारीकरण की प्रक्रिया के तहत महज उद्योगों के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया। परिणामतः भारत की खेती-किसानी, जिस पर अधिसंख्य आबादी निर्भर थी, उपेक्षित होती चली गई। गांव उपेक्षा का शिकार हुआ। मुल्क को राजनैतिक आजादी जरूर मिली पर गांव गुलाम होते चले गये। खेती के उपेक्षित होने से किसान मजदूर बनने लगे और गांवों से पलायन कर शहरों की तरफ भागने लगे। गांव के हुनर और ज्ञान शहर को शोभा बढ़ाने लगे। इससे खेती पिछड़ती चली गई। सन् 65 आते-आते देश भयंकर खाद्य संकट का शिकार होने लगा। सन् 66-67 के अकाल ने गांव की पीड़ा को समझने का अवसर प्रदान किया। इस पीड़ा से उपजा 'ग्रो मोर फूड' का नारा। पंडित जवाहर लाल जी के बाद जब लाल बहादुर जी देश के प्रधान मंत्री बने तो उन्होंने गांव की गरीबी और किसानों की बदहाली को दूर करने के तरीके अपनाये और जय जवान, जय किसान का आकर्षक नारा दिया।

सन् 61-62 की चीन से हुई पराजय ने उन्हें जवानों को सशक्त करने और किसानों को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में मोड़ दिया। देश अब 'ग्रो मोर फूड' के नारे से लैस हो खेती के आधुनिक तरीके अपनाता चला गया। खेती के आधुनिक तरीके ने गांव के ज्ञान और किसानों के हुनर को ही नहीं नकारा बल्कि खेती की परम्परागत पद्धति को भी नकार दिया। बाबा आदम से चले आ रहे विभिन्न प्रकार के बीज, पशुधन और जंगल पर निर्भर खेती को मशीन और पूंजी का पिछलग्गू बना दिया। बड़े पैमाने पर रासायनिक खाद और संकर बीज के साथ-साथ ऐसे यंत्र और उपकरणों के प्रयोग खेती में होने लगे जिनकी उपलब्धता यहां नहीं थी। परिणामतः हमें विदेशों से मशीन, रासायनिक खाद और दवाइयां मंगानी पड़ी। दो दशक तक उपज काफी बढ़ी और लगा देश अनाज के मामले में स्वावलंबी बन गया है। लेकिन अनाज के रूप में अपने पास उन्नत धान और गेंहू थे। अन्य प्रकार के सैकड़ों किस्म के धान और मोटे किस्म के अनाज के अस्तित्व समाप्त होने लगे। परिणामतः देश भयंकर कुपोषण और रक्ताल्पता का शिकार होता चला गया। अब खाद्य संकट का भी दौर शुरू हो गया। कुपोषण और महिलाओं की रक्ताल्पता ने इस आधुनिक उपज और समझ का पर्दाफाश कर दिया है। इसलिए अब सिर्फ देश और दुनिया परम्परागत खेती और जैविक पद्धति की ओर फिर मुखातिब होने लगे हैं। आधुनिक खेती और रासायनिक खेती के पैरोकार डॉ. स्वामीनाथन भी अब इस ओर मुड़ गये।

जहां तक परम्परागत खेती और जैविक पद्धति की बात है, तो इसमें झारखंड की पद्धति से बहुत कुछ सीखा जा सकता है। झारखंड की खेती का विकास यहां के पूर्वजों ने यहां की भू-आकृति, भू-संस्कृति और जलवायु को ध्यान में रखकर किया था। खेती हमारे लिये महज पेट भरने की विधा नहीं थी और न यह महज रोजगार थी। खेती हमारी संस्कृति और सभ्यता में रची बसी भू-सांस्कृतिक धरोहर थी। जिसको जंगल, पशुधन और कुटीर उद्योग तथा लोक ज्ञान के आधार पर मौसम के अनुरूप सजाया संवारा गया था। हमारे पूर्वजों को यहां को भू-आकृति और जलवायु का व्यवहारिक ज्ञान था। किस मौसम में हवा की रफ्तार और रूख कितनी और किस ओर होती है इसको ध्यान में रखकर खेतों का निर्माण किया जाता था। खेतों की बनावट में भी वर्षा की मात्रा और पानी के बहाव के रूख को ध्यान में रखा जाता था। जंगल से बहकर आने वाली हरित खाद कितनी मात्रा में खेतों को मिलेगी? क्या इससे खेतों की उर्वरा शक्ति बरकरार रहेगी? या फिर इसमें अतिरिक्त सजीव खाद का इस्तेमाल करना पड़ेगा? इसकी भी जानकारी रखते थे। किस मौसम में किस तरह की खेती की जरूरत है तथा लोगों को मौसम के अनुरूप किस तरह के अनाज या खाद्यान्न की जरूरत है, को ध्यान में रखकर खेता की जाती थी। खेतों की विविधता और विभिन्नता ने भी हमारी संस्कृति को विविधतापूर्ण बनाया।

इसी प्रकार खेती को कितने पानी की जरूरत है? अतिरिक्त पानी जो प्रकृति हमें देती है, का इस्तेमाल कैसे किया जाये? इस पानी में कौन-कौन से जलजीव तैयार किये जायें, जो मानव समाज के लिये जरूरी हैं इस पर भी ध्यान रखा जाता था। प्रोटीन और

विटामीन की मात्रा संतुलित रहेगी या नहीं, का भी ज्ञान अपनी परम्परागत खेती करने वालों को थी।

खेती की नमी कैसे बरकरार रहेगी तथा उसकी जैविकता कैसे विकसित और पुष्ट होती रहेगी, इसका भी समुचित ज्ञान अपने समाज के पास था। भोजन का मतलब महज पेट भरना भर नहीं होता था, बल्कि उसमें रस, सुगंध, स्वाद और शरीर की जरूरत के अन्य तत्त्व कैसे समाहित रहे, इसपर विशेष ध्यान दिया जाता था। किस मौसम में किस तरह की सब्जी? किस तरह के फल? किस तरह के तेलहन और दलहन चाहिए? इसकी भी व्यवस्था की जाती थी। खेतों के प्रकार को ध्यान में रखकर अनाज, सब्जियां या अन्य मसाले तथा तेलहन उपजाये जाते थे। कम पानी में कौन अनाज हो सकता है? और अधिक पानी के प्रहार को कौन अनाज सह सकता है? इसकी जानकारी का इस्तेमाल अपने पूर्वज करते थे। खेती महज पूंजी और बाजार के लिये नहीं बल्कि जीवन और जीविका को भी संपुष्ट और सुव्यवस्थत करने के लिये की जाती थी। इस तरह अपनी खेती पूरी तरह से स्वावलंबी थी। तकनीक और श्रम के अर्थ में खेती परस्परावलंबी थी। इसलिए यहां 'मदइत' की व्यवस्था पनपी थी। श्रम और साधन के मामले में सभी समुदाय एक-दूसरे पर निर्भर थे। खेती, श्रम और साधन के बीच अन्योन्याश्रित संबंध थे। यहां से समाज में सामुदायिक भावना पनपती थी। समाज में बंधुता और बहनापा का भाव विकसित होता था। यानी परम्परागत खेती समाज के विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों और समुदायों को जोड़ने का सजीव साधन थी। एक सशक्त विधा। एक संस्कृति।

('जलवायु संकट देशज समाधान' से साभार)

उत्तम खेती, मध्यम बान

पूरी दुनिया जलवायु संकट से जूझ रही है। इसका मूल कारण मानव द्वारा प्रकृति का जरूरत से अधिक दोहन करना है। विकसित पश्चिमी देश गर्म हो रही धरती का तापमान नियंत्रित करने को तैयार नहीं है। अपनी सुख-सुविधाओं में कटौती करने पर राजी नहीं हैं। इसके बदले वे विकासशील देशों को जलवायु संकट से उबरने के लिए समय-समय पर बड़ी राशि देने को तैयार हैं। उनकी मनसा है कि विकासशील देश इस राशि से 'पर्यावरण मरम्मत' के विभिन्न कार्य करें जैसे - वृक्षारोपण और कार्बन उत्सर्जन में कमी करना। जलवायु संकट पर प्रत्येक वर्ष 'शिखर सम्मेलन' होते हैं। लेकिन इस दिशा में कोई ठोस सामूहिक निर्णय अब तक नहीं लिया जा सका है। विकसित तथा विकासशील सभी देशों के अपने-अपने हितों की सूची व तर्क हैं।

पारंपरिक तौर पर भारत में खेतीबारी को आजीविका का सर्वोत्तम साधन माना गया है। 'उत्तम खेती, मध्यम बान/अधम चाकरी, भीख नदान' हमारे बुजुर्ग यही सूक्ति बार-बार दोहराया करते थे। परंतु उस वक्त मौसम का मिजाज बदला नहीं था। समय पर नियमित वर्षा होती थी और उसी अनुरूप खेतीबारी भी होती थी। लेकिन जैसे-जैसे जलवायु-चक्र में बदलाव आता गया, वैसे-वैसे वर्षा जल की कमी होने लगी और किसानों को खेत व बारी की सिंचाई के लिए भूगर्भ जल का इस्तेमाल करना पड़ा। सिंचाई के इस विकल्प से खेतों में पानी पहुंच तो गया लेकिन धीरे-धीरे भूगर्भ जल का स्तर भी नीचे जाने लगा यानी घटने लगा। फसलों की अधिक पैदावार के मद्देनजर रासायनिक खाद, संकर बीज और कीटनाशकों का अत्यधिक इस्तेमाल होने लगा। इस प्रकार की रासायनिक खेती वाले खेतों में आवश्यकता से अधिक पानी की खपत होने लगी। भूगर्भ जल का दोहन भी अधिक होने लगा। नतीजा यह हुआ कि किसानों के लिए 'खेती-किसानी' का काम हानिकारक साबित होने लगा।

खेती की लागत के हिसाब से फसल की पैदावार नहीं होने लगी। फलतः किसान खेतीबारी त्याग कर आजीविका की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। गांवों और खेती-किसानी करनेवाले ग्रामीणों के लिए यह अच्छी स्थिति नहीं है। यही स्थिति जारी रही तो राज्य के हालात बदतर हो जायेंगे। संपूर्ण देश में अन्न की उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

और हमारे पूर्वज 'जल-संग्रहण' के कई उपायों का इस्तेमाल करते थे। आज उन्हीं को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता आ गई है। यह दुखद है कि 'खेती के आधुनिक तरीकों' के नाम पर 'जल-संग्रहण' के कई पारंपरिक उपायों की उपेक्षा हुई। इसे हतोत्साहित किया गया अथवा भुला दिया गया।

जबकि वर्तमान जल- संकट की स्थिति में वे अत्यन्त कारगर साबित हो सकते हैं। क्योंकि जल-संग्रहण के इन उपायों को लागू करने में लागत कम है। ग्रामीण सामूहिक प्रयास से इनका निर्माण आसानी से कर सकते हैं। इससे दो फायदे एकसाथ होंगे। एक सामूहिकता मजबूत होगी। और, दूसरा यह कि खेतीबारी अथवा अन्य घरेलू उपयोग के लिए पानी संग्रह कर रखा जा सकेगा।

- संवाद टीम

जलवायु संकट : पहाड़िया जनजाति की आजीविका खतरे में

पूरा विश्व जलवायु परिवर्तन का शिकार हो रहा है। वर्षा कम और बेमौसम हो रही है। जल संकट गहराता जा रहा है। झारखंड के दुमका जिला अंतर्गत शिकारीपाड़ा, रानेश्वर, गोपीकादर, काठीकुंड आदि इलाकों के पहाड़ों पर सदियों से जीवन यापन कर रहे आदिम जनजाति पहाड़िया समुदाय पर भी इसका सीधा असर दिख रहा है। हाल के दिनों में दुमका समेत पूरे संथाल परगना के इलाकों में तेजी से पहाड़ों का क्षरण होने, पर्यावरणीय असंतुलन बढ़ने, जैव विविधता खत्म होने, पहाड़ों पर महत्वपूर्ण पौधों के नष्ट होने से पहाड़िया समुदाय की आजीविका और जीवन दोनों पर संकट खड़ा हो गया है।

ब्रिटिश शासन के दौरान संथाल परगना क्षेत्र में 1338 वर्ग मील क्षेत्र के जंगल को चिह्नित किया गया और इसे दामिन-इ-कोह कहा गया। राजमहल के पहाड़ी क्षेत्र में ही यह भूभाग स्थित है, जिसके पर्वतीय क्षेत्र आदिम जनजाति पहाड़िया के रहने व बसाहट के लिए चिह्नित किया गया। लेकिन हाल के दिनों में पहाड़ों में अवैध खनन एवं जंगल कटाई, के कारण आदिम जनजाति पहाड़िया की पहाड़ आधारित जिंदगी सबसे ज्यादा प्रभावित है।

जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणामों के कारण संकटग्रस्त समुदाय माना जाने वाला पहाड़िया समुदाय जिसकी जनसंख्या वृद्धि ऋणात्मक है उनकी सदियों पुरानी देशज-ज्ञान और खेती किसानी, भोजन-पद्धति संकटग्रस्त हो गया है। पर्यावरणीय संकट को देखते हुए हाल के कुछ दिनों से भारत सरकार द्वारा मोटा अनाज की पैदावार को बढ़ावा देने के लिए प्रयास शुरू किया गया हैं लेकिन पहाड़ पर प्राचीन काल से ही कुराव खेती (झूम खेती) कर मोटा अनाज उगाने वाले इन पहाड़िया समुदायों की ओर सरकार ध्यान नहीं दे रही है। नतीजा है कि पहाड़ पर होने वाली परंपरागत खेती अब समाप्त होने के कगार पर है। इसकी सबसे बड़ी वजह हाल के कुछ वर्षों से इस इलाके में असमय और कम बारिश है। पहले यहां लंबे समय तक जो बारिश हुआ करती थी, अब जलवायु परिवर्तन की वजह से उसका समय कम हो गया है और उसकी गति तेज हो गई है। ऐसे में जहां लंबे समय तक होने वाली बारिश से पहाड़ और जमीन में पानी धीरे धीरे समाता चला जाता था, वाटर-लेबल का रिचार्ज होता था वह तेज बारिश की वजह से बह जाता है। मौसम का यह खतरनाक ट्रेंड दुमका समेत

संताल के इलाके में कुछ वर्षों से दिख रहा है। जिसके कारण पहाड़ पर नमी खत्म हो गई है। इस इलाके में पहले छोटी-छोटी नदी, नाले, जोरिया थीं जिनमें साल भर पानी रहता था। आजकल सब कुछ सूख गया है। पहाड़ों पर सैकड़ों छोटे-छोटे झरने सूख गये हैं या फिर पूरी तरह समाप्त हो गये हैं।

वर्तमान में, पहाड़ों के ऊपर उगने वाले फलों, मशरूम और पत्तेदार सब्जियों की स्वदेशी किस्में पिछले दो दशकों में उनकी उपलब्धता कम हो गई है। पहाड़ के ऊपर बहने वाले निश्चल झरनों में देशी मछलियाँ, जो अतीत में पहाड़िया समुदाय द्वारा अक्सर खाई जाती थीं और उसी से उन्हें उचित मात्रा में पोषक तत्व मिल जाता था अब नदियों, झरनों और तालाबों के सूखने के कारण वह दुर्लभ हो गयी है। पानी की कमी के कारण पहाड़ पर जीवन की बुनियादी ज़रूरतों जैसे पीने, खाना पकाने, स्नान, सफाई आदि जैसे अन्य कामों के लिए भी काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। मौसम में इस बदलाव के कारण पहले की तुलना में (जंगल

और पहाड़ में) उपज की मात्रा काफी कम हो गई है। पहाड़िया समुदाय का प्राचीन काल से चली आ रही पहाड़ और जंगल पर परंपरागत खेती बरबटी, मक्का, सरसों, कुरथी, मडुआ, ज्वार, बाजरा, गोंदली, कोदवा जैसे मोटे अनाज अब बहुत कम उपज हो रही है। पहाड़ की तलहटी पर अरहर, उरद, मूंग, मूंगफली, तिल की उपज भी अब बहुत कम हो रही है। सबसे बड़ी बात है कि ये अनाज पौष्टिक तत्वों से भरपूर होते हैं। आज इन्हीं अनाजों को उपभोक्तावादी संस्कृति में मिलेट्स के नाम से बेचा जा रहा है। कहना नहीं होगा कि मौसम की मार अगर कोई समुदाय सीधी तौर पर झेल रहा है तो वह लुप्तप्राय: पहाड़िया जनजाति है, जिनका पूरा जीवन साहचार्य ही पहाड़ पर आधारित है।

पहाड़ पर की खेती उनके जीवन को बचाता था तो दूसरी ओर उनकी आजीविका का भी एकमात्र जरिया था। पहाड़ पर उगने वाले कंद-मूल, दर्जनों प्रकार के हीमोग्लोबिन बढ़ाने वाले साग-सब्जी अब लुप्तप्राय: हो गए हैं। इसका असर यह हुआ है कि पहाड़िया में कुपोषण जनित बीमारी कुछ वर्षों में काफी बड़ी है। पहाड़ियों का औसत जीवन (40-45) रह गया गया है। बच्चे नाटे और ठिगने पैदा हो रहे हैं। शिकारीपाड़ा प्रखंड के खड़ीपहाड़ गांव की 10 में से 8 पहाड़िया महिलाएं शरीर में खून की कमी से जूझ रही हैं क्योंकि उनके खाने की थाली से परंपरागत साग, कंद-मूल और मोटा अनाज गायब हो गया है।

सरकार भी इस समुदाय की देशज ज्ञान, खेती किसानी, भोजन-पद्धति और परंपरा को समझने और प्रमोट करने के बजाय इस समुदाय को अशिक्षित और पिछड़ा मानकर, सरकारी योजना बनाने और उसे थोपने में जुटी है। पहाड़ पर पहाड़िया के घरों में कुछ वर्षों पहले तक प्रेशर कुकर नहीं दिखता था लेकिन अब वहां भी खाना इस पर बनने लगा है जिस कारण उनकी पूरी दिनचर्या बदल गयी है और उसका सीधा दुष्प्रभाव पहाड़ियों के स्वास्थ्य पर पड़ा है।

दुमका जिले के रानेश्वर प्रखंड के कुंडीखाल गांव के निवासी सामाजिक कार्यकर्ता और जड़ी-बूटी के जानकार रामजीवन आहडी कहते हैं कि जंगल और पहाड़ के चलते ही प्रिमिटिव ट्राइब के अंतर्गत आने वाला हमारा पहाड़िया समाज अब तक बचा हुआ है। लेकिन अब जंगल और पहाड़ मिटते जा रहे हैं और हमारा वजूद भी समाप्त होने की कगार पर है। सरकारी उदासीनता और मौजूदा पर्यावरणीय संकट ने हमारे सामने दोहरी चुनौती खड़ी कर दी है। वे कहते हैं कि नगदी फसल के रूप में चिरौता, बरमसिया अरहर, अगैया फूल, कचना फूल, सतमूल अनंत मूल, वन हल्दी, वन तुलसी, वन प्याज, वन लहसुन, पहाड़ और जंगल में ही मिलता था। यह सभी कंदमूल और खाद्य पदार्थ औषधीय गुणों से भरपूर था। चिरौता, पाऊं, बरमसिया अरहर जॉन्डिस बीमारी को महज कुछ दिनों में खाने से ही जड़ से खत्म करने की शक्ति रखता है और इसे बेचकर और खाकर ही पहाड़ियां समुदाय अपना जीवन गुजार रहा था लेकिन हाल के कुछ वर्षों से यह सभी कंदमूल और फल लुप्तप्राय: हो गए हैं। पर्यावरणीय संकट के कारण इनकी आजीविका और जीवन दोनों संकट में है।

- डा. दुष्यंत कुमार

जलवायु परिवर्तन के कारण खेती किसानी घाटे का सौदा

झारखंड में बोकारो से लेकर हजारीबाग जिले का ग्रामीण क्षेत्र खेती किसानी के मामले में पिछले कई दशक से काफी उन्नत एवं चर्चित रहा है। लेकिन पिछले एक दशक से किसानों की कमर टूटती नजर आ रही है। इसका प्रमुख कारण जलवायु परिवर्तन है। झारखंड के अधिकांश किसान मॉनसून के भरोसे धान एवं साग सब्जियों की खेती बाड़ी करते हैं। मॉनसून साथ दिया तो फसल की पैदावार ज्यादा होगी, और अगर मॉनसून दगा दे गयी तो सारी मेहनत पर पानी फिरना तय। खेती किसानी की पुरानी एवं प्राचीन पद्धतियों पर गौर करें तो हमारे पूर्वजों को रोहइन यानी रोहिणी नक्षत्र में खेतों में बीज डालने से लेकर धानकटनी के बाद खलिहान में धान की ओसाई कर चावल तैयार करने तक मौसम की तमाम गतिविधियों एवं हलचलों की सटीक जानकारी उन्हें पता था। इस कारण बड़ी आसानी से खेती बाड़ी कर हर घर में अन्न का भंडार भरा पूरा रहता था। अब समय बदला तो मौसम ने भी करवट ले लिया। कब मौसम किस तरह का हलचल पैदा करे, ये मौसम विभाग तो अलर्ट जारी कर देता है, लेकिन किसानों के सामने यह आफत से कम नहीं होता। हर साल सूखा और कभी कभी अतिवृष्टि से किसान परेशान रहते हैं। हम सब जानते हैं कि रोहिणी नक्षत्र में जब खेत में धान के बीज डाले जाते हैं तो कुछ दिनों तक धरती जितनी गर्म हो तो उसके बाद बारिश आते ही बीजों का अंकुरण तेज गति से होता है। इसके बाद समय समय पर बारिश से खेतों में धान के बिहन यानी बिचड़े तैयार होकर बरसात के मूसलाधार बारिश में धनरोपनी होती है। फिर समय समय पर बारिश से धान की खेती पुष्ट होती जाती है और अगहन महीने में धनकटनी प्रारंभ हो जाती है। यह तो सामान्य प्रक्रिया है जो पुरानी पद्धतियों से चली आ रही है, लेकिन अब सबकुछ बिल्कुल उल्टा पुल्टा हो गया है। जलवायु परिवर्तन से अब रोहिणी नक्षत्र में जो बीज डाले जाते हैं वे बीज धरती में ही खराब हो जाते हैं, क्योंकि बारिश का कोई निश्चित अता पता नहीं रहता। बारिश के इंतजार में पूरा सावन बीतने लगता है, इसके बावजूद धरती में एक बूंद पानी नहीं। सावन के आखिरी समय जब अचानक अतिवृष्टि या कोई साइक्लोन आये तो किसी तरह किसान बिहन छींटते हैं तो धनरोपनी होते होते भादो महीना बीतने लगता है। इस तरह सोहराय में जब धनकटनी शुरू होनी चाहिए तो उस समय धान की फसल खेत में ही रहती है। पूस माह तक धनकटनी जारी रहती

है। कुल मिलाकर खेती किसानी की अपनी प्राचीन व समृद्ध परंपरा अब जलवायु परिवर्तन की भेंट चढ़ गई है। किसान समझ नहीं पा रहे हैं कि आखिर वे क्या करे। हर साल यही दौर चलता रहता है और खेती किसानी सिर्फ घाटे का सौदा बनता जा रहा है। अब किसी भी किसान से खेती किसानी के बारे चर्चा करने पर सीधे जवाब दे देते हैं कि क्या करें बाप दादा ने खेतों को बचाकर रखा है, जिसे अब हम सब उनकी धरोहर समझकर खेती किसानी कर रहे हैं। इसमें समय और पैसे दोनों की बर्बादी हो रही है। अब न तो पारंपरिक बीज रहे न ही गोबर खाद। सब कुछ बाजार से खरीदने में काफी पैसा खेती किसानी में लग जाता है लेकिन इसका रिटर्न नहीं आ पाता। अगर सूखा पड़े तो सरकारी महकमों में सूखा राहत के नाम पर सिर्फ नौटंकी के सिवा कुछ भी नहीं होता। क्योंकि असल किसानों को सूखा राहत का मुआवजा मिलता ही नहीं। इसके लिए फर्जी किसानों की बाढ़ है जो खेती किसानी नहीं करते वे सरकारी राशि की बंदरबांट कर ले जाते हैं। एक और बात महत्वपूर्ण है कि खलिहान में धान की फसलें आने के बाद अब अकसर साइक्लोन की भेंट चढ़ जाती है, जिससे किसानों की सारी

मेहनत पर पानी फिर जाता है। असमय साइक्लोन के कारण कभी खेत में फसलें सड़ जाती है, कभी खलिहान में भींगकर खराब हो जाती है। इस परिस्थिति में किसान की कमर टूट जाती है।

अब किसानों को वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप खेती किसानी के तौर तरीके सीखने होंगे। अब रोहिणी नक्षत्र में बीज नहीं, बल्कि देर से खेतों में बीज डालने की आदत शुरू करनी होगी। देर से फसल पकने से लेकर पूस माह में धनकटनी की आदत डालनी होगी। कुल मिलाकर खेती किसानी की प्राचीन परंपरा अब नहीं रही। इसके बदले अब बदले हालात में किसानों को उस ढांचे में ढलने की आदत शुरू करना है, तभी खेती सम्भव है। खेती का मतलब सिर्फ धान ही नहीं, बल्कि साग सब्जियों की खेती भी जलवायु परिवर्तन के कारण बार बार बर्बाद हो जा रही है।

जलवायु परिवर्तन या जलवायु संकट खुद ही नहीं आया, बल्कि इसे इंसानों ने ही लाया, जिसका खामियाजा आज भुगतना पड़ रहा है। जल्द से जल्द इस दिशा में वैश्विक स्तर पर कोई ठोस एवं कारगर कदम न उठाए गए , तो पूरी दुनिया भयंकर सूखे, बाढ़ या ऐसी ही विनाशकारी प्राकृतिक आपदा के चंगुल में फंसकर बर्बाद हो सकती है। अब भी समय है कि इस पर चिंतन मनन कर जलवायु संकट से कैसे निजात मिले, इस दिशा में समेकित प्रयास करने की जरूरत है। तेजी से हो रहे जंगलों एवं पहाड़ का विनाश इसका एक प्रमुख कारण है। विकास की इस अंधी दौड़ में धरती की हरीतिमा कैसे बचाया जाए, और पुनः हरियाली की ओर हम सभी कैसे लौट पाएं, इस दिशा में सरकार से लेकर तमाम लोगों को एकजुट होकर कैसे साझा कार्यक्रम तय किये जायें, इस पर पहल करने की जरूरत है, तभी खेती किसानी से लेकर मानव एवं मानवेत्तर प्राणियों व प्रकृति की रक्षा हो सकती है।

- शेखर शरदेंदु

मिट्टी रहित खेती यानी आधुनिक खेती

कृषि की वे पद्धतियाँ जिनमें जड़ों को विकसित करने के लिये मिट्टी का प्रयोग किये बिना पौधों को उगाया जाए, मिट्टी रहित यानी आधुनिक खेती खेती कहलाती हैं। देखा जाय तो खेती-किसानी में मिट्टी का प्रयोग बिल्कुल नहीं करना, अटपटा-सा लगता है, लेकिन ऐसा संभव है। देश में कई जगहों पर मिटटी रहित खेती हो रही है।

आधुनिक खेती ऐसी ही खेती है जिसमें मिट्टी की आवश्यकता बिल्कुल नहीं होती है। मिट्टी रहित फसलों के कई फायदे हैं - मसलन फसल के उत्पादन में कीट का प्रकोप न के बराबर होना, कम स्थान पर ज्यादा पैदावार का होना, तुलनात्मक रूप से इसमें कम पानी की जरूरत, बाहरी वातावरण एवं मौसम पर नियंत्रण करना आसान, कम लागत में ज्यादा लाभ मिलना, एक सीमित स्थान में खेती करने से किसान को कीट और टिड्डियों के हमलों और अचानक तेज़ी से बढ़ती गर्मी पर नियंत्रण करने में मदद मिलना इत्यादि प्रमुख हैं। ऐसी प्रणालियाँ कठिन हैं लेकिन इन्हें बनाए रखना असंभव नहीं है, इन प्रणालियों की कम-से-कम बुनियादी समझ होना आवश्यक है।

खासकर स्कूली छात्रों को गणित, जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान और इंजीनियरिंग जैसे विषयों के व्यावहारिक ज्ञान के साथ कृषि कार्य के रूप में स्कूलों में एक्वापोनिक सिस्टम स्थापित करने के लिये प्रोत्साहित कर सकते हैं। बिना मिट्टी की खेती करने की तकनीक हाइड्रोपोनिक्स (Hydroponics) कहलाती है। इसमें एक फुल्ली ऑटोमेटेड ग्लास हाउस (Glass Green House) बनाया जाता है। उसमें ही खेती होती है।

मिट्टी के बिना पौधों को पोषण (Nutrition) कैसे मिलेगा? तो इसका जवाब है कि पौधों को पोषण दिया जाता है पानी से। इस तकनीक में भी मिट्टी की तरह कुछ चीज की आवश्यकता होती है, जिसमें बीज का अंकुरण हो और पौधे जड़ जमा सके। उसके लिए एक प्लास्टिक के बैग में कोको पीट का उपयोग करते हैं। कोको पीट (Coco Peat), मतलब नारियल के छिलके को पीट पीट कर रूई की तरह बना दिया जाता है। उसे ही एक बैग में भर कर उसमें पौधे लगाए जाते हैं। जहां तक पोषण की बात है तो पौधों में पानी के जरिए पोषक तत्व दिए जाते हैं।

- राजकुमार

जलवायु संकट : पूँजीवाद की उपज

जलवायु संकट पृथ्वी का सबसे बड़ा संकट है। पृथ्वी लोक, द्युलोक एवं भूलोक अर्थात सम्पूर्ण संसार के जीव - जंतुओं, पेड़-पौधों की सबसे प्रमुख आवश्यकताएँ जल एवं वायु का संकट होना, प्रदूषित होना जलवायु संकट कहलाता है। सर्वविदित है कि जल और वायु प्रकृति की निःशुल्क देन है जो प्राण रक्षा के लिये अति आवश्यक है। हम जल के बिना भले ही 2-3 दिन जिंदा रह सकते हैं लेकिन वायु के बिना हम 2-3 मिनट भी जिंदा नहीं रह सकते। इनका संकट उत्पन्न होना चिंता का विषय है। इसके समाधान के लिये साकारात्मक दृष्टि एवं दिशा को अपनाते हुए सामूहिक रूप से सक्रिय पहल करने की जरूरत है।

जलवायु संकट को जलवायु परिवर्तन, जलवायु आपातकाल, पर्यावरणीय विनाश तथा पर्यावरणीय पतन के रूप में भी जाना जा सकता है। जलवायु संकट में हम ग्लोबल वार्मिंग तथा जलवायु परिवर्तन और उनके प्रभावों पर प्रकाश डालते हैं जबकि जलवायु आपातकाल का उपयोग मानवता और ग्रह के लिये ग्लोबल वार्मिंग के खतरे का वर्णन करने और आक्रामक जलवायु परिवर्तन शमन का आग्रह करने के लिये किया जाता है। विभिन्न नकारात्मक प्रभाव जो निरंतर जलवायु परिवर्तन हमारे ग्रह पर पैदा कर रहे हैं या पैदा करने की बात करते हैं, खासकर जहां इन प्रभावों का मानवता पर सीधा प्रभाव डालता है जलवायु संकट कहलाता है। जलवायु संकट शब्द ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन शब्दों की तुलना में अधिक मजबूत भावनात्मक प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करता है, जिससे तात्कालिकता की भावना को बढ़ावा मिलता है।

आपातकाल को जोखिम और तात्कालिकता के उत्पाद के रूप में माना जाता है। जबकि जलवायु संकट शब्द मानवीय समूहों में सक्रिय चिंतन एवं परिचर्चा तथा साकारात्मक क्रियान्वयन की भावना को उत्पन्न करता है तथा कुछ राजनीतिक कवरेज में वकालत की भावना ला सकता है।

जलवायु संकट का मतलब पृथ्वी के औसत तापमान में हो रही वृद्धि से है। पृथ्वी पर सूर्य की किरणें प्रकाश एवं ताप के रूप में पड़ती हैं जो पुनः परावर्तित होकर वायुमंडल में चली जाती हैं। लेकिन सूर्य से पृथ्वी को मिलने वाला प्रकाश एवं ताप के कुछ भाग को वायुमंडल में उपलब्ध ग्रीनहाउस गैसें इन्हें परावर्तित होने से रोक लेती हैं। पृथ्वी पर उपलब्ध ग्रीन हाउस गैसें यथा (1) जलवाष्प (2) कार्बन डायक्साइड (3) मिथेन (4) ओजोन (5) नाइट्रोजन ऑक्साइड (6) क्लोरो फ्लोरो कार्बन हैं जो जीव जगत के संरक्षण एवं संवर्द्धन में सकारात्मक भूमिका का निर्वाह करते हैं। लेकिन इन गैसों में कार्बन डायक्साइड/ सी ओ टू की मात्रा का अधिक बढ़ना विश्व तपन का कारण है जो पृथ्वी पर स्थित जीव-जगत के लिये हानिकारक है। वर्तमान समय में वायुमंडल में कार्बन डायक्साइड की मात्रा 30 प्रतिशत तक बढ़ गयी है।

यूरोपीय देशों सहित चीन तथा अमेरिका ने आर्थिक विकास की जिस गति को अपनाया है उससे ग्लोबल वार्मिंग में तत्संबंधित देशों में क्रमशः 3 डिग्री सेल्सियस, 4 डिग्री सेल्सियस तथा 4 डिग्री सेल्सियस से अधिक ताप में वृद्धि होने का है जिसका नाकारात्मक प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ेगा। उत्तरी अफ्रीकी देशों तथा भारत ने इसे 2 डिग्री सेल्सियस पर रोकने को माना है। विश्व तपन/ ग्लोबल वार्मिंग के प्रमुख घटक कार्बन उत्सर्जन में अमेरिका का योगदान 27 प्रतिशत, चीन का योगदान 14 प्रतिशत तथा भारत का योगदान 7 प्रतिशत है।

जलवायु संकट का उत्पन्न होना प्राकृतिक कारणों में से ज्वालामुखी का विस्फोट होना एवं समुद्री धाराओं में परिवर्तन का होना कम है जबकि मानव सृजित ग्रीन हाउस प्रभाव में कार्बन डायक्साइड का बढ़ जाना अधिक है। परंपरागत कृषि के स्थान पर आधुनिक कृषि को अपनाकर रसायनिक खादों एवं रसायनिक कीटनाशकों का जमीन में अत्यधिक उपयोग करना, बाजार विस्तारीकरण और औद्योगीकीकरण को बढ़ावा देना मुख्य घटक हैं, जो पूँजीवाद की उपज है।

पूँजीवाद के आर्थिक विकास की अंधी दौड़ में पूँजीवादी देशों ने पर्यावरण स्थायित्व आधारित आर्थिक विकास के स्थान पर पर्यावरण स्थायित्व विहिन आर्थिक विकास के मार्ग को बहुत द्रुतगति से अपनाना शुरू कर दिया है। जल, जंगल एवं जमीन के अंधाधुंध विदोहन एवं उपयोग ने जलवायु संकट की जड़ों को काफी मजबूत कर दिया है एवं इसमें दिनानुदिन वृद्धि होती जा रही है।

पूँजीवाद के समर्थक विकसित एवं विकासशील देशों के नीति-निर्माताओं एवं शासनाध्यक्षों ने अपने यहाँ के आदिवासियों तथा मूलवासियों के प्राकृतिक जीवन शैली की पद्धति एवं उनके हितों को नजर अंदाज करते हुए आर्थिक विकास की जिस नयी पद्धति का बीजारोपण किया है उसी की उपज जलवायु संकट है।

विश्व तपन/ग्लोबल वार्मिंग के चलते पृथ्वी के ध्रुवों पर स्थित ग्लेशियर का पिघलना, समुद्री जल-स्तर में वृद्धि का होना, कहीं भयंकर बारिश के चलते बाढ़ की विभीषिका तो कहीं बारिश के अभाव से सूखा का प्रकोप, चक्रवाती तूफानों का आना, वायु एवं जल का प्रदूषित होना एवं जीवों में बीमारियों का बढ़ना लगातार जारी है।

विश्व के औसत तापमान में विगत वर्षो में 1.2 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई है। संयुक्त राष्ट्र संस्था ने इसे 1.5 डिग्री सेल्सियस पर रखना आवश्यक माना है। अगर यह वृद्धि 2 डिग्री सेल्सियस तक हो जाती है तो पृथ्वी पर उपलब्ध जीव-जगत के लिये काफी कष्टकर है।

संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन/कोप (सी ओ पी)-26 में तय किया गया कि कार्बन डायक्साइड उत्सर्जन को 2050 तक शून्य डिग्री तक लाया जाय। अर्थात जितना कार्बन डायक्साइड का उत्पादन होता है उतना खपत हो जाय। इस संबंध में यूरोपीय देशों ने इस स्थिति को प्राप्त करने की घोषणा 2050 तक की है जबकि चीन इसे 2060 तक तथा भारत इसे 2070 तक प्राप्त करने की बात करता है।

पूँजीवादी देश जलवायु संकट के लिये अधिक जिम्मेवार हैं जबकि इस संकट से उबरने का मुख्य दायित्व अपने ऊपर न लेकर विकाशसील देशों के ऊपर थोपना शुरू कर दिया है।

वर्तमान समय की मांग है कि जलवायु संकट से उबरने के लिये दुनिया के विकसित एवं विकासशील देशों को एक साथ मिलकर समन्वय स्थापित करते हुए कार्य करने की जरूरत है ताकि पूरी दुनिया को बचाया जा सके।

- डॉ. कैलाश प्रसाद राउत

ग्रीन स्कूल : जलवायु संकट के खिलाफ देशज पहल

हम सब जानते हैं कि आज अपना झारखंड सहित देश और दुनिया भयंकर संकट के दौर से गुजर रही है। इसमें जहां एक तरफ जलवायु संकट लगातार बढ़ता जा रहा है वहीं दूसरी तरफ आजीविका के स्रोतों का विनष्ट होना जारी है। यह जितना प्राकृतिक है उससे कहीं ज्यादा व्यवस्थाजन्य हस्तक्षेप के कारण है। खेती किसानी से लेकर पशुपालन, कुक्कुट पालन, मत्स्य पालन खतरे में है। लघुउधोग और कुटीर उद्योग मृतप्राय हो गए हैं। कुकुरमुत्ते की तरह अनियोजित और कुनियंत्रित शहर तथा महानगर बसाये जा रहे हैं, या बसने को विवश किए जा रहे हैं। करोड़ों युवा उस ओर अपनी मातृभूमि को छोड़ रोजगार की तलाश में शहरों /महानगरों की ओर भागे जा रहे हैं। परिणामतः गांव के गांव युवा विहीन हो रहे हैं। यह फोर्स्ड (बलात) पलायन है।

इस पलायन को रोकना, इनके लिए सम्मानजनक आजीविका और रोजगार की व्यवस्था अपने गांव या पास-पड़ोस में करना तथा आसपास की प्रकृति, परिवेश और संस्कृति की रक्षा करना आज की बड़ी चुनौती है।

इसी चुनौती को देखते हुए संवाद ने "ग्रीन स्कूल" की अवधारणा और ढांचे को आगे बढ़ाने और इसके माध्यम से ग्रामीण युवाओं को शिक्षित-प्रशिक्षित और हुनरमंद बनाने का संकल्प लिया है। यह काम आसान नहीं है। लेकिन इतना कठिन भी नहीं। इंसान की बुद्धि और विवेक से इसे संभव बनाया जा सकता है। यह एक संभव संकल्प है। इसे अनुभवी, हुनरमंद और सुविज्ञ कार्यकर्ताओं द्वारा सफल बनाया जा सकता है।

आइए , "ग्रीन स्कूल" की अवधारणा को समझें।

इसके निम्न आयाम हैं :

पहला – झारखंड की प्रकृति, संस्कृति, समाज और उसके तानेबाने को समझना। इसके लिए क्लासरूम का कोर्स तैयार करना तथा कोर्स के आधार पर जमीनी स्तर पर प्रयोग करना।

दूसरा – सबंधित गांव की संरचना को समझना। गांव की स्थापना, रहवास के तरीकों और आजीविका के समग्र उपादानों को समझना।

तीसरा – गांव और पास पड़ोस के जातीय /वर्गीय शाक्ति संरचना और शक्ति संतुलन को समझना।

चौथा – कथित विकास की अवधारणा और उसके बुनियाद को समझना, उसके प्रभाव और उससे प्रभावित होने के कारणों को जानना/ समझना। आज के कथित विकास के हितचिंतन (क्लास इंटरेस्ट) को समझना और विश्लेषण करना सीखना।

पांचवा – प्रकृति, पर्यावरण, नैसर्गिक संतुलन के लिए मानव का उद्विकास ; मानव और अन्य प्राणियों के रिश्तों को समझना और उसके आधार पर आचरण करने की कला और संस्कृति की परंपरा को समझना और अमली जामा पहनाने के लिए अभिप्रेरित करना।

छठा – खेती, किसानी, बागवानी, पशुपालन, कुक्कुट पालन, मत्स्य पालन, कुटीर उधोगों और चारागाह के आपसी रिश्ते और औचित्य को समझना।

सातवां – गांव, गांव सभा, गांव स्वशासन और लोकतंत्र को

समझना। इसके इतिहास, भूगोल, संस्कृति/ सांस्कृतिक अभिक्रम/ खेलकूद/ रंजन-मनोरंजन/ पर्व त्यौहार के बीच बुनावट और बनावट को आत्मसात करना।

आठवां – दुनिया, देश और राज्य-राष्ट्र की अवधारणा की समझ विकसित करना। दुनिया में हो रहे परिवर्तन के प्रभाव को समझना और उसका विश्लेषण करना सीखना। जलवायु संकट तथा आर्थिक विषमता के लिए जिम्मेदार ताकतों की पहचान करना/समझ विकसित करना।

नौवां – गांव के स्तर पर उक्त समस्याओं के समाधान हेतु युवाओं के साथ तानाबाना बुनना।

दसवां – महिलाओं की समझ के आधार पर समुचित, सतत् और टिकाऊ विकास की नींव गांव गांव में खड़ी करना।

इन तमाम बिंदुओं पर पाठ्यक्रम, सामग्री, फिल्म, स्कील विकसित करने होंगे। साहित्य/सामग्री निर्माण करना होगा।

संवाद की पहल

संवाद ने इसके लिए तात्कालिक और दीर्घकालिक दृष्टि विकसित की है। इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाने की योजना को अमलीजामा पहनाने हेतु अभी मधुपुर के लालपुर (देवघर जिला) और इटकी प्रखंड (रांची जिला) में प्रयोग स्थल का चयन किया है। ग्रामीणों के समर्थन और सहयोग के बलपर यह सद्इच्छा और सद्प्रयोग हो, इसकी कामना है।

क्लास और प्रयोगस्थल की व्यवस्था

ग्रीन स्कूल के क्लास प्रायः पेड़ की छाया में होंगे। बारिश, तेज लू या शीतलहर में कमरे के भीतर क्लास चलेंगे। अमूमन क्लास में किशोर-किशोरियों (13-18वर्ष) को प्राथमिकता दी जायेगी। लेकिन रुचि रखने वाले युवा (18 वर्ष से ऊपर वाले) भी इसमें हिस्सा ले सकते हैं। कोशिश होगी कि एक क्लास में अधिकतम 15 किशोर-किशोरियां रहें। हर मौसम में 90 दिन का कोर्स होगा। इसके बाद उन्हें इस सत्र का प्रमाण पत्र दिया जायेगा। एडवांस कोर्स क्रमवार और 90 दिनों का होगा।

कोर्स में दो घंटे का अध्ययन, दो घंटे का खेतों, जंगलों तथा प्रयोगस्थल में शारीरिक श्रम करने होंगे। हरेक सहभागी को एक एक क्यारी दी जायेगी। इसकी वह पूरे कार्यकाल तक देखभाल करेगा और जो भी आमदनी होगी वह उसका होगा। डेढ़ घंटे का खेलकूद/ सांस्कृतिक/ कलाकारी से जुड़े कार्यक्रम होंगे। सुबह 6 बजे से लेकर 11.30 यह क्रम चलेगा। मौसम के अनुसार रुटीन में फेरबदल होता रहेगा। सभी सहभागी मिलजुलकर कर भोजन बनायेंगे और दोपहर को 12.30 बजे सामूहिक भोजन करेंगे। प्रयोगस्थल में उपजी सामग्रियों का सभी मिलकर इस भोजन में इस्तेमाल करेंगे। सहभागियों द्वारा उपजाई गई सामग्रियों को स्कूल खरीद लेगा।

आसपास के छात्र उल्टी बेला घर जा सकते हैं। लेकिन अगर दूरदराज या बाहर के छात्र होंगे तो उनके आवास की व्यवस्था स्कूल परिसर में ही करना होगा। इनको न्यूनतम राशि भुगतना करनी होगी।

शिक्षक/विज्ञ लोगों की व्यवस्था

इसके शिक्षक तीन तरह के होंगे। पहला खेती किसानी में रुचि रखने वाले; दूसरा जंगल, पहाड़ और पशु पक्षियों के जानकार और तीसरा खेलकूद /गीत नृत्य पेंटिंग-फिल्मों के विज्ञ लोग। विशेष विषयों के लिए 'विजिटिंग विज्ञ' लोग आते जाते रहेंगे।

गांव /जंगल/ नदी /खेत खलिहान और लोगों से सीधा संबंध

जहां यह केंद्र होगा वह गांव जैविक और जैवविविधता का गांव होगा। सभी किसान (महिला किसान सहित) वनोपज पर निर्भर लोग इसमें सहायक होंगे। यानी सभी सहभागियों (शिक्षक, विज्ञ और छात्र) का सीधा संबंध हरेक ग्रामीण से होगा।

धीरे-धीरे पूरा गांव ही हरित विधालय (ग्रीन स्कूल) बन जाये ऐसी तैयारी करनी होगी। प्रत्येक छात्र हरेक परिवार के साथ जीवंत ढंग से जुड़ जाए ऐसा वातावरण का निर्माण करना होगा। लंबे समय में यह कोशिश होगी कि वह गांव और विधालय अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति अपनी प्राकृतिक धरोहर, हुनर, बुद्धि और शरीर श्रम के बलपर कर ले। यानी सभी परस्परावलंबी और स्वावलंबी बन जाएं ऐसी तैयारी करनी होगी। स्वशासन और लोकतांत्रिक चेतना से ग्रीन स्कूल और ग्रीन गांव लैस हो इस ध्येय से यह प्रयोग शुरू करना है।

- पर्यावरण डेस्क

जैविक कीटनाशक

पिछले 50 वर्षों में कीटनाशक दवाओं का इस्तेमाल लगभग 40 गुणा बढ़ गया है। हमारे कृषि विशेषज्ञ इस उपलब्धि पर गर्व अनुभव कर सकते हैं, लेकिन जनता को यह बताना नहीं चाहते कि जन-स्वास्थ्य पर इसके कारण कितना बुरा प्रभाव पड़ रहा है। अब तो खतरा यहां तक उत्पन्न हो रहा है कि दुष्प्रभाव से अगली पीढ़ियां विकलांग होगी। 'सोसायटी फॉर पेस्टीसाइड साइंसेज' के अध्यक्ष डा. मलहोत्रा ने ठीक ही कहा कि 'न केवल हम अपने आपको जहर खिला रहे हैं, बल्कि आने वाली संतान का भविष्य भी खतरे में डाल रहे हैं।

किसानों द्वारा फसलों को कीड़ों-बीमारियों से बचाव हेतु कीटनाशक, बैक्टेरियानाशक, फफूंदनाशक व वायरस रोधी दवाओं का इस्तेमाल बड़ी मात्रा में होता है। इसका प्रभाव जल प्रदूषण तथा वायु प्रदूषण के रूप में हो रहा है। कीटनाशक दवाएं भूमिगत जल पर भी अपना प्रभाव छोड़ रही हैं। इस प्रकार जल, जमीन एवं जलवायु पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है और इसके कारण पर्यावरण बिगड़ता जा रहा है। खाद्यान्न, सब्जियां तथा फलों के सेवन से जहरीले अवशेष हमारे पेट में जमा होकर पाचन क्रिया को प्रभावित कर रहे हैं। मांस, मछली एवं अंडे आदि मांसाहारी खाद्य भी प्रदूषित हो रहे हैं। शरीर के मांसपेशियों में जहरीले पदार्थ जमा होने रहने के कारण हमारा हृदय, मस्तिष्क, यकृत तथा गुर्दे भी प्रभावित हो रहे हैं।

सर्वेक्षण प्रतिवेदन से ज्ञात हुआ है कि अंगूर एवं सेव पर कीटनाशकों का प्रयोग अधिकतम होता है। इससे कैंसर जैसी घातक बीमारी की आशंका बढ़ती जा रही है। संतरे एवं नींबू में भी जहर का अंश पाया गया है। प्रतिवेदन में यह उल्लेख किया गया है कि कीटनाशक व्यवहार करने के बाद प्राप्त सब्जियों को बहुत अच्छी तरह से धोने के बाद भी इनके जहरीलेपन को 55 प्रतिशत तक ही कम किया जा सकता है। शेष 45 प्रतिशत जहर शरीर में चला जाता है। कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा कराए गए सर्वेक्षण से पता चला है कि मां के दूध में भी डी.डी.टी. की मात्रा स्वीकार्य सीमा से ऊपर पहुंच गयी है, जो चिंतनीय है।

विश्व विख्यात खाद्य एवं कृषि प्रतिष्ठान (एफ.ए.ओ.) द्वारा कराए गए अध्ययन के अनुसार खेती में लगभग 300 कीटों की ऐसी प्रजातियां उत्पन्न हो गई हैं जिन पर प्रचलित कीटनाशकों का असर नहीं के बराबर है। दूसरी ओर कीटनाशकों के अंधाधुंध

प्रयोग से उपयोगी कीट भी समाप्त हो रहे हैं, जबकि ये हानिकारक कीटों को बढ़ने से रोकते हैं। अपने देश में जो कीटनाशक दवाएं इस्तेमाल की जा रही हैं, उनमें 70 प्रतिशत दवाएं अत्यंत हानिकारक हैं। इनमें से 12 दवाएं ऐसी हैं जिन पर विकसित देशों में प्रतिबंध लगाया जा चुका है। लेकिन हमारे यहां इसका इस्तेमाल धड़ल्ले से हो रहा है।

कीटनाशक दवाओं के बढ़ते प्रयोग के उपरांत भी हानिकारक कीड़ों तथा बीमारियों के कारण खाद्यान्न, सब्जियां तथा फलों के मामले में प्रति वर्ष हानि करोड़ों रुपए में हो रही है। अंतराष्ट्रीय विकास संस्थान, कनाडा के अनुसार कीटनाशकों के प्रयोग के कारण विकासशील देशों में प्रति वर्ष 10,000 व्यक्ति मरते हैं, तथा 40,000 से भी अधिक व्यक्ति किसी न किसी बीमारी के शिकार होते हैं।

जहरीली दवाओं का व्यवहार निरंतर होने से भूमिगत जल, नदियां, झरने तथा तालाब के पानी भी प्रदूषित हो रहे हैं। भारत में जांच करने की सुविधायें उपलब्ध नहीं होने के कारण जहरीली दवाओं का प्रभाव के सही आंकड़े प्राप्त नहीं हो पाते हैं। अधिकतर सरकारी विभागों में किसी भी समस्या के समाधान के लिए दृष्टिकोण बहुत संकीर्ण रहता है। जो विभाग कीटनाशकों दवाओं के लिए है, वह यह नहीं सोचता है कि हानिकारक कीड़ों के नियंत्रण के लिए कोई और भी उपाय है या नहीं। इसी प्रकार उर्वरक विभाग केवल उर्वरकों की बात करता है, भूमि की उत्पादकता एवं क्षमता की बात नहीं सोचता है। जरूरत है कि हमारा दृष्टिकोण व्यापक एवं दूरदर्शी हो ताकि हम समस्या के मूल कारणों पर ध्यान दे सकें और समाधान को प्रबल कर सकें।

- स्व० ब्रज किशोर प्रसाद

जैविक खेती में है जलवायु संकट का हल

पर्यावरण संकट के बीच जैविक खेती किसी संजीवनी से कम नहीं। जैविक खेती को अपनाकर मिट्टी और पानी की शुद्धता को काफी हद तक प्रदूषित होने से बचा सकते हैं। लेकिन जैविक खेती से संबंधित कई भ्रांतियां या गलतफहमियां हैं जिसकी वजह से किसान इसे नहीं अपनाना चाहते हैं। इन गलतफहमियों को दूर कर किसानों को जैविक खेती को अपनाने की जरूरत है। आमतौर पर किसानों का यह मानना है कि जैविक खेती से उत्पादन में काफी कमी आती है यानी यह फायदे का सौदा नहीं है। लेकिन सच्चाई इसके ठीक उलट है। किसान यदि जैविक खेती के विभिन्न तरीकों को सही समय पर सही मात्रा में उपयोग करता है तो वह प्रथम वर्ष से पर्याप्त मात्रा में उत्पादन कर सकता है। सच्चाई है कि जैविक खेती में मात्रात्मक व गुणात्मक उत्पादकता प्राप्त होती है। खेती की उत्पादकता में वृद्धि किसान की स्वयं की मेहनत, समय पर सिंचाई, मौसम का प्रभाव सभी पर निर्भर करती है। फसलों या उत्पादकता को हमें एक अन्य जीवधारक की तरह ही देखना चाहिए। जिस तरह हर प्राणी या जीवन में उत्पादन क्षमता उसकी आतंरिक क्षमता पर निर्धारित होती है, वैसे ही फसल की उत्पादकता भी। उन्हें एक कारखाना या फैक्ट्री की नजरों से नहीं देखना चाहिए। इसके ठीक उलट किसानों द्वारा कीट नियंत्रण हेतु इस्तेमाल किए जाने वाले विषैले रसायनों के दुष्परिणाम सामने आने लगे हैं। पर्यावरण दिन-प्रतिदिन प्रदूषित हो रहे हैं। लोगों में ब्लड प्रेशर, दिल का दौरा, मिर्गी, मधुमेह जैसी बीमारियां आम हो रही हैं। कीटनाशकों के रूप में इन जहरीली दवाइयों का अंधाधुंध प्रयोग न केवल प्राणी जगत के लिए घातक होता जा रहा है बल्कि इससे जमीन व भूमि भी विषाक्त होती जा रही हैं साथ ही कीटों में अवरोध क्षमता बढ़ती जा रही है और परिणामस्वरूप नित नए नए कीट बढ़ रहे हैं।

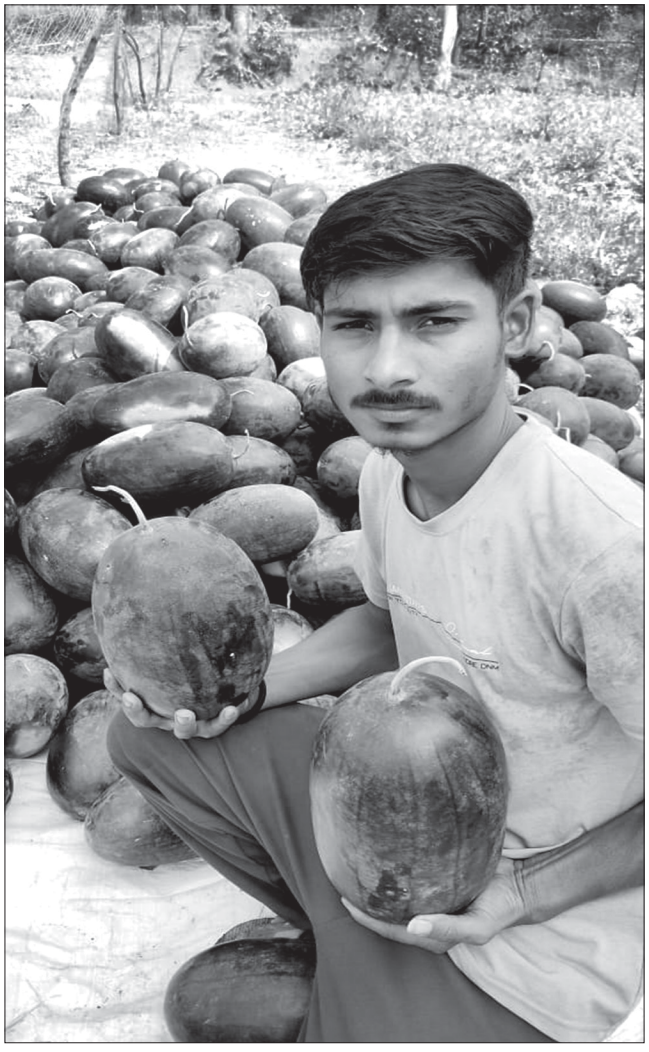

'संवाद' द्वारा विगत कई सालों से जैविक खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2019 से लेकर अब तक संवाद द्वारा राज्य के 14 जिलों के 600 से अधिक गांवों में किसानों को बीच जैविक खेती के जागरूकता पैदा करने की कोशिशें की गई हैं। इसके परिणाम स्वरूप इन गांवों से कुल 7344 किसानों ने जैविक खेती की प्रक्रिया को अपनाया है जिनमें से महिला किसानों की कुल संख्या 3683 एवं पुरुष किसानों की कुल संख्या 3661 है और वे कुल 34970.64 एकड़ जमीन पर जैविक के खेती के कार्य में लगे हुए हैं। 'संवाद' के कार्यक्षेत्र हजारीबाग के सिमराकोनी गांव के आशीष कुमार ने वर्ष 2023 में अपने 20 डिसमिल में 10000 रुपए की लागत से पीला तरबूत लगाया। इसमें उसे 30,000 रुपए की आमदनी हुई। इसी प्रकार संदीप प्रजापति ने अपनी जमीन पर लाल भिंडी एवं टमाटर की खेती की जिसमें उसे 65,000 रुपए की आमदनी हुई। ग्रीन क्लब के कुछ अन्य सदस्यों ने भी कुछ ऐसी ही खेती की शुरुआत की। आमतौर पर इस इलाके व अन्य जगहों पर लाल तरबूज व हरे रंग की भिंडी उपजाई जाती है, लेकिन पीला तरबूज व लाल भिंडी की पैदावार बहुत ही कम होती है और बाजार में अच्छी खासी मांग बढ़ती जा रही है। जैविक खेती की उपज को इन फसलों को ग्रामीणों तथा शहरी लोगों ने इसे काफी पसंद किया है। इस प्रकार

की खेती की चर्चा जब आस पास के गांवों में हुई तो आप पास के गांव पुरनी आडरा, बाघमारा, चिची, कुबा के किसान सिमराकोनी आए और इन फसलों से संबंधित जानकारियां हासिल की। वे सभी इन फसलों को उपजाने से संबंधित टिप्स यहां के किसानों से लिए लकर वापस गए। वे अब इन फसलों को अपने गांव में भी उगाना चाहते हैं। संवाद के अन्य कार्यक्षेत्र महादेवरायडीह गांव का एक युवक छोटेलाल टुडू, नौकरी या अन्य कामों की तलाश में भकटता रहा। रोजी मजदूरी की तलाश में दुमका बाजार जाता रहा। जामा प्रखंड के चिगलपहड़ी पंचायत भवन में संवाद द्वारा अप्रैल 2021 में जैविक कृषि पद्धतियों पर एक दिवसीय प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया गया। छोटेलाल भी उस उस शिविर में शामिल हुए। शिविर में जैविक खेती के तरीके और उसके फायदे बताए गए। इस शिविर के माध्यम से उसने विभिन्न प्रकार के फलों, करेला और तरबूज आदि सब्जियों की खेती के फायदे को समझा और उन्होंने मूली, कददू, मिर्च, भिंडी सहित विभिन्न सब्जियां लगाईं। उसने 1 बीघा जमीन पर करेला, झींगा व अन्य कई सब्जियां लगाईं। वर्तमान में छोटेलाल अपनी पत्नी और दो बच्चों की पढ़ाई-लिखाई और खान पान के साथ खुशहाल जीवन जी रहा है और उसके परिवार की आर्थिक स्थिति काफी सुधरी है। गांव के अन्य लोग छोटेलाल से प्रभावित हैं और जैविक खेती अपना रहे हैं।

रिपोर्ट संकलन : सीमांत

किसान क्या कर सकते हैं?

धरती के मिजाज में बदलाव आ जाने से मौसम बदल गया है। यह बात हम सब जानते हैं। वर्षा या तो असमय, अत्यधिक अथवा कम होती या नहीं भी होती है। ऐसी स्थिति में वर्षा पर आश्रित होकर खेती कर पाना कठिन होता जा रहा है। दूसरी दिक्कत खाद-बीज की है। झारखंड के किसानों के पास सिर्फ धान की ही सैकड़ों किस्में थीं। लेकिन विगत 40-50 वर्षों में वैसे पारंपरिक धान की किस्मों का सफाया हो गया है। अभी जो बचे हुए हैं, उनको उंगलियों पर गिना जा सकता है। वर्तमान में धान की फसल उगाने के लिए किसान बाजार से धान-बीज खरीद कर उपयोग कर रहे हैं। इनसे भोजन के लिए चावल बनाया जा सकता है।

लेकिन अगले वर्ष के लिए उससे बीज बचाकर रखा नहीं जा सकता है। क्योंकि वे अनुत्पादक होते हैं और जल्द खराब हो जाते हैं। यानी किसान बाजार पर आश्रित हो जाता है। इस बीज के लिए उपयोग में रसायनयुक्त खाद भी बाजार से खरीद कर लाते हैं। कीटनाशक भी रसायनयुक्त और जहरीले होते हैं। ये तत्काल फसल की पैदावार बढ़ाते हैं। लेकिन कुछ समय बाद खेतीबारी के लिए उपयोगी कीट-पतंग और कीड़े-मकोड़ों का समूल नाश कर देते हैं। ये जमीन को अनुपजाऊ भी बनाते हैं। बाजारू बीज, खाद व कीटनाशक का प्रयोग जिस खेत में किया जाता है। उसमें पानी भी अधिक लगता है।

रसायनयुक्त खाद व कीटनाशक के प्रयोग से होनेवाली पैदावार में भी जहरीला प्रभाव रह जाता है। यह मानव उपभोग के लिए खतरनाक होता है। इस खतरनाक स्थिति से बचने के लिए किसान क्या कर सकते हैं? इस खतरनाक स्थिति से निपटने का एक ही सरल व सहज उपाय है - पारंपरिक जैविक खेती।

पारंपरिक का अर्थ हुआ कि वैसे बीज, खाद और प्राकृतिक कीटनाशक जिसका उपयोग पूर्वज किया करते थे। इनको पुनर्जीवित कर उन्हीं का उपयोग करना। पूर्वजों द्वारा की जानेवाली खेतीबारी हर प्रकार से सुरक्षित, स्वावलंबी और टिकाऊ व्यवस्था थी।

बाजार के चौतरफा दबाव के बावजूद यहां के कुछ आदिवासी इलाकों में किसानों ने धान, मकई, मडुवा, बाजरा आदि के पारंपरिक बीज अभी भी बचाकर रखे हैं। इनकी खेती वे पारंपरिक तरीके से करते हैं। गोबर-खरपतवार एवं नीम की खल्ली से देसी खाद बनाते हैं। राख जैसे कीटनाशक का उपयोग वे आज भी करते हैं।

- पर्यावरण डेस्क

बांग्लादेश : पानी बीच प्यासा देश

बांग्लादेश जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के लिए, नोट्रे डेम ग्लोबल एडाप्टेशन इनिशिएटिव और जलवायु जोखिम सूचकांक से डेटा और रैंकिंग के जर्मनवॉच के आधार पर, दुनिया के सबसे कमजोर दस देशों में से एक है। यह पहले से ही नियमित और गंभीर प्राकृतिक खतरों का सामना करता है : उष्णकटिबंधीय चक्रवात, नदी का कटाव, बाढ़, भूस्खलन और सूखा। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों की व्यापक श्रेणियां जो बांग्लादेश के तटीय क्षेत्रों (देश का 32% हिस्सा और लगभग 35 मिलियन लोगों का घर) को प्रभावित करेंगी, वे हैं तापमान और वर्षा के पैटर्न में परिवर्तन, समुद्र के स्तर में वृद्धि, चक्रवातों की आवृत्ति और तीव्रता में परिवर्तन, तूफान की वृद्धि, नदी और मिट्टी की लवणता में परिवर्तन। समुद्र के स्तर में वृद्धि का प्रभाव अधिक खतरनाक है। खारा पानी धीरे-धीरे तटीय भूमि को डुबो देता है, फसलों और घरों को नष्ट कर देता है और इसे पीने वालों के लिए बीमारी लाता है। अतिरिक्त नमक उच्च रक्तचाप का कारण बन सकता है, जिससे लोगों में स्ट्रोक, दिल के दौरे और गर्भपात का खतरा बढ़ जाता है।

ये आपातस्थितियाँ देश में लगभग सभी को प्रभावित करती हैं। 2018 यूएसएआईडी रिपोर्ट के अनुसार, 89% बांग्लादेशी (लगभग 143 मिलियन) "उच्च" या "बहुत उच्च जलवायु जोखिम वाले क्षेत्रों" में रहते हैं। बांग्लादेश का 75% हिस्सा तकनीकी रूप से पानी के भीतर है। समुद्र के बढ़ते स्तर के कारण 2050 तक इसकी 11% भूमि खोने का अनुमान है। इससे बांग्लादेश में हर सात में से एक व्यक्ति को अपने घरों से विस्थापित होना पड़ सकता है।

पिछले कुछ दशकों में तटीय बांग्लादेश में मिट्टी, भूजल और सतही जल का लवणता स्तर बढ़ रहा है। यहाँ का तटीय “तटीय क्षेत्र समतल है। यहां तक कि अगर पानी एक मीटर भी बढ़ जाता है, तो इससे 17 फीसदी जमीन को नुकसान पहुंचेगा। समुद्र के शीर्ष पर खारा पानी नीचे बैठ जाता है, जिससे भूजल की लवणता भी बढ़ रही है। विशेषज्ञों का यह भी मानना है कि ऊपरी गंगा में पानी के घटते प्रवाह के कारण भी लवणता बढ़ रही है। एक नीति संस्थान, बांग्लादेश सेंटर फॉर एडवांस्ड स्टडीज के कार्यकारी निदेशक और जलवायु परिवर्तन विशेषज्ञ अतीक रहमान ने कहा - "बांग्लादेश के तटीय जिलों - खुलना, सतखिरा और बागेरहाट - में सतह का अधिकांश पानी इतना खारा हो गया है कि इसे अब पीने या अन्य घरेलू उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है।" वहां के कुछ इलाकों में लगभग 70 प्रतिशत निवासी दूर के तालाबों में पानी पर निर्भर हैं और दूर से पानी लाने का बोझ महिलाओं को उठाना पड़ता है। हाल के सालों में लोग पीने के पानी के लिये, बरसात के मौसम में बर्षा जल छत के टैंकर में इक्ठ्ठा कर रखते हैं या फिर मीठा पानी काफी ज्यादा दामों पर खरीदते हैं।

सरकार ने भी लोगों के घर की छत पर वर्षा जल संचयन के लिए टैंक स्थापित किये हैं।

प्राकृतिक स्रोतों में लवणता के कारण क्षेत्र में नलकूप से पानी खींचना उपयुक्त नहीं हैं और खारे पानी का शुद्धिकरण कर मीठा करना एक महंगा तरीका है। तटीय क्षेत्र में 1,000 मिलीग्राम प्रति लीटर की सीमा की तुलना में 4,400 मिलीग्राम प्रति लीटर (mg/L) नमक की मात्रा पायी जाती है। एक एकल रिवर्स ऑस्मोसिस जल शोधन प्रणाली की लागत 3 मिलियन बांग्लादेशी टका (लगभग $35,000) है। पीएसएफ फिल्टर्स भी सरकार द्वारा पीने के पानी की आपूर्ति के लिए लगाये गये थे। उनमें से अधिकांश बेकार या प्राकृतिक आपदाओं से नष्ट हो गए हैं। इसलिए वर्षा जल संचयन अभी भी एक कम लागत में प्रभावी तरीका है।

बांग्लादेश कृषि विकास निगम की लघु सिंचाई सूचना सेवा इकाई द्वारा 2018 के एक अध्ययन, 'दक्षिणी क्षेत्र के भूजल में खारे पानी की घुसपैठ प्रदान करना' से पता चला है कि खारे पानी बंगाल की खाड़ी से भूजल स्रोतों में भी प्रवेश कर रहा था। अप्रैल-मई 202 में समुद्र से करीब 200 किलोमीटर दूर नरैल जिले के लोहागढ़ में मधुमती नदी में खारा पानी मिला था। बांग्लादेश सरकार के मृदा संसाधन विकास संस्थान द्वारा 2017 के एक

अध्ययन में पाया गया कि समुद्र के पास की नदियों में लवणता का स्तर काफी बढ़ गया है और लंबे समय तक बना रहता है। इसने कहा कि मिट्टी की लवणता भी 2005-2015 से 10 वर्षों में 7.6 से 15.9 भागों प्रति हजार (पीपीटी) तक बढ़ी है। स्वीकृत स्तर 0.4 से 1.8 पीपीटी है।

सूत्रों का कहना है कि बरिसाल संभाग की 11.7 लाख हेक्टेयर कृषि भूमि में से 386,870 हेक्टेयर अत्यधिक लवणीय है। पटुआखली, भोला, पिरोजपुर और बरिसाल जिलों की नदियों में भी लवणता बढ़ गई है। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल, बांग्लादेश के जलवायु वित्त विश्लेषक एम जाकिर हुसैन खान ने कहा कि दक्षिण-पश्चिम तट पर 11 जिलों के 64 उपजिलों में लगभग पांच मिलियन सीमांत लोगों को प्रभावित करने वाले चक्रवात आइला की भी जल संकट में भूमिका है। उन्होंने कहा कि मिट्टी की लवणता ने वनस्पति को भी खतरनाक स्तर तक कम कर दिया है और मछलियों सहित जलीय जानवर बढ़ती लवणता के कारण नष्ट हो रहे हैं।

अमेरिकी भूभौतिकीय संघ की एक हालिया रिपोर्ट बताती है कि 2050 तक समुद्र के बढ़ते स्तर - जो स्वच्छ पेयजल की उपलब्धता को प्रभावित करते हैं - के व्यापक प्रभाव होंगे और देश भर में लगभग 1.3 मिलियन लोगो के पलायन की स्तिथि उत्पन्न हो सकती है। आंतरिक विस्थापन निगरानी केंद्र के अनुसार, पिछले दशक में प्राकृतिक आपदाओं से हर साल लगभग 700,000 बांग्लादेशियों को विस्थापित होना पड़ा। बांग्लादेश सेंटर फॉर एडवांस स्टडीज के कार्यकारी निदेशक डॉ अतीक रहमान ने कहा कि जलवायु परिवर्तन के कारण आजीविका का नुकसान, विशेष रूप से कृषि में, इस विस्थापन का मुख्य कारण है।

बांग्लादेश के दक्षिण-पश्चिम तट में पानी की समस्या को हल करने के लिए स्थानीय नागरिकों की एक जल समिति कई वर्षों से काम कर रही है। जल समिति सरकार से जो मुख्य मांगें कर रही है, उनमें शामिल हैं : राष्ट्रीय जल नीति और राष्ट्रीय जल प्रबंधन योजना में पेयजल की लवणता को शामिल करें; प्रत्येक प्रभावित गाँव में कम से कम एक तालाब खोदें; सभी के लिए नमक रहित पीने योग्य पानी की उपलब्धता सुनिश्चित करें और कृषि और घरेलू उद्देश्यों के लिए मीठे पानी की आपूर्ति की व्यवस्था करें। अभी तक सरकार इनकी ऐसी मांगे पूरी नहीं कर पायी है परिणामत: विभिन्न इलाकों के लोग अब आंदोलनों की तैयारी कर रहे हैं।

(सन्दर्भ-वर्ल्ड एशिया पसिफ़िक, यूनाइटेड न्यूज़ बांग्लादेश, रिलीफ वेव, अर्थ जर्नलिज्म नेट वर्क)

- उपेन्द्र शंकर

जरूरी है जस्ट ट्रांजिशन

झारखंड जंगल पहाड़ों व खनिज प्रधान प्रदेश है। झारखंड का क्षेत्रफल 79.714 वर्ग किलोमीटर है तथा जिसकी जनसंख्या 3 करोड़ 29 लाख 814 है। झारखंड में 24 जिले हैं। झारखंड खनिज प्रधान राज्य होने के कारण झारखंड की अर्थव्यवस्था खनिज आधारित है। झारखंड का कुल राजस्व का 64% राजस्व खनिज के उत्पादन से ही आता है। थर्मल पावर बिजली का मुख्य स्रोत है। झारखंड में कृषि विकास की संभावनाएं हैं लेकिन इस पर विशेष प्लानिंग करके कार्य नहीं किया गया है। जबकि झारखंड की आजीविका का साधन कृषि, वन और जल है। इनका विकास करके ही झारखंड में सतत और टिकाऊ विकास की कल्पना की जा सकती है। वर्तमान में झारखंड राज्य में कोयला खनन, उद्योग और थर्मल पावर उद्योग से धनबाद, बोकारो रामगढ़, हजारीबाग, चतरा और गिरिडीह जिलों की आधी जनसंख्या इन्हीं उद्योगों पर रोजगार के लिए निर्भर है। जस्ट ट्रांजिशन की अवधारणा जलवायु परिवर्तन के कारण विश्व में आई है। पूरी दुनिया में जलवायु परिवर्तन के कारण प्राकृतिक आपदाओं के कारण व्यापक आर्थिक क्षति हो रही है। इसीका आकलन करने के बाद पूरी दुनिया के विकसित देशों और विकासशील देशों ने 2015 के जलवायु परिवर्तन शिखर सम्मेलन में, 2 डिग्री तापमान कम करने के लिए, फॉसिल फ्यूल्स आधारित उर्जा निर्माण को 2050 तक पूरी तरह बंद करने का निर्णय लिया है। निर्णय यह भी लिया कि कोयला का उत्पादन और कोयला से बनने वाले बिजली के कारखाने को 2030 तक कम कर दिया जाय। जबकि कोयला, भारत की ऊर्जा और औद्योगिक क्षेत्र की रीढ़ है। हाँ, सत्य यह भी कि ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में सबसे बड़ा योगदानकर्ता कोयला है। पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण में लागत बढ़ने के कारण कोयला से बिजली बनाने में लागत बढ़ता जा रहा है। इसलिए, कोयला के उत्पादन को चरणबद्ध रूप से बंद करना अनिवार्य हो गया है। लेकिन कोयला लाखों लोगों की आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत है और भारत के कोयला खनन राज्यों और जिलों में अर्थव्यवस्था को संचालित करता है। आने वाले वर्षों में, ये लोग और यह क्षेत्र कोयला अर्थव्यवस्था से दूर हो जायेगा। जस्ट ट्रांजिशन विश्व स्तर पर एक अवधारणा के रूप में उभरा है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि कोयले पर निर्भर समुदाय को चरणबद्ध तरीकों से दूसरी आर्थिक व्यवस्था में समायोजित किया जा सकें। झारखंड के लिए जस्ट ट्रांजिशन का मतलब होगा, कोयले के उपयोग को चरणबद्ध तरीके से समाप्त करना। इसके लिए एक ऐसा वातावरण का निर्माण करना जिसमे आजीविका के अवसर को टिकाऊ बनाया जा सके। इस संदर्भ में झारखंड के कोयला खनन जिले में गहन शोध करके व्यापक विकल्प तलाशना होगा। जस्ट ट्रांजिशन यह भी प्रस्तावित करता है कि कोयला खनन जिलों में राज्य सरकारों को एक न्यायपूर्ण परिवर्तन की योजना बनाने के लिए अभी से तैयारी करनी चाहिए। कोयला खनन का ढाई सौ साल पुराना कारोबार बदल जाएगा, इसके लिए अभी से नीतियां बनानी होंगी। इंटर गवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (आईपीसीसी) की 2018 रिपोर्ट के अनुसार 2050 तक कोयला आधारित विद्युत उत्पादन लगभग बंद होना है। यह ग्लोबल वार्मिंग को दो डिग्री सेल्सियस के अंदर रखने के लिए आईपीसीसी द्वारा सुझाए गए महत्वपूर्ण उपायों में से एक है। इस तरह कोयला उद्योगों से राज्यों को होने वाली आय कम होती जाएगी। भविष्य की इस चुनौती का हल निकालने के लिए कोयला उत्पादक राज्यों को अभी से भावी नीतियों की तलाश करनी होगी।

- गुलाब चंद्र